गर्दा लेक (इटली)
२४ नवम्बर २००६

संदेश संख्या – १७६

एक उपनिषद् यह भी

शिष्य और गुरू के मध्य समझदारी की ऊर्जा की गहन साझेदारी में घटित संवाद ही उपनिषद् है। अभी–अभी स्वतःस्फूर्त एक उपनिषद् यहाँ उल्लिखित है –

शिष्य : हाल के दिनों में शरीर में कुछ घटित हुआ, जैसे कि :–

(१) शरीर सर्वत्र सभी स्थितियों में पूर्ण तटस्थता की अवस्था में रहता था । अब यहाँ कुछ भी प्रमाणित करने को नहीं था । विश्वास दिलाने के लिए या विश्वस्त होने के लिए भी नहीं । किसी को प्रभावित करना और किसी से प्रभावित होना भी नहीं । न कोई गतिविधि थी और न कोई शिथिलता । शरीर द्वारा मात्र अनुक्रिया की जाती थी, प्रतिक्रिया नहीं । किए गए कार्यों के परिणाम की चिन्ता नहीं थी और न ही उनके सही और गलत का द्वन्द्व था । अपने मुख्य कार्यालय में प्रबन्ध निदेशक के साथ बैठक के दौरान भी ऐसा ही हो रहा था ।

(२) घटनाएँ घटित होने के बाद विस्मृत हो जाती हैं किन्तु जब कभी आवश्यकता होती है, याद आ जाती है । कभी–कभी तो न तनिक आगे और न तनिक पीछे, सहसा ठीक उसी समय याद आ जाती है जब उसकी जरूरत होती है । ऐसे अवसरों पर, कभी–कभी क्षणिक संशय भी होता है कि कदाचित् ऐसा पुनः होगा या नहीं, या फिर याद रखने के लिए कुछ करना चाहिए या नहीं । किन्तु याद रखने के लिए कुछ किया भी तो नहीं जा सकता । आपने कहा है कि ऐसा होता है । यह मेरे लिए राहत की बात है ।

यह सब ऐसे समय में घटित हो रहा है जब मेरी बेटी का विवाह समीप है । कभी–कभी संशय होता है कि इस शरीर की ऐसी अवस्था होने पर भी क्या आवश्यकतानुसार सब कुछ ठीक होगा? किन्तु सब कुछ ठीक से हो रहा है । यह आनन्द या विस्मयपूर्ण 'सनक' की अवस्था है । और आश्चर्य की बात यह है कि मेरी यह स्थिति मेरी समस्त प्रकार की दैनिक क्रियाकलापों के दौरान भी लोगों की दृष्टि से सर्वथा ओझल रहती है ।

और मजेदार बात यह है कि केवल साझा करने के अतिरिक्त यह सब लिखने का और कोई प्रयोजन नहीं है । जो भी घटित हो रहा है, सहज हो रहा है, उसमें चित्तवृत्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं होता । यह सजगता इस शरीर में बिल्कुल नयी है । अतः शिष्य गुरू के चरणों में सिर झुकाकर (भारतीय परम्परा) प्रणाम करता है ।

गुरु : शून्य में सभी संख्यायें, ऋणात्मक अनन्त से धनात्मक अनन्त तक, समाहित हैं। 'वर्तमान' या 'अस्तित्व' या कालातीत अवस्था या निर्द्वन्द्वता वर्णनातीत है क्योंकि विचार की कोई भी गतिविधि अद्भुत शान्तिपूर्ण सजगता की इस अवस्था का स्पर्श नहीं कर सकती । यह सजगता उस अस्तित्वमय अनन्तकाल की है जिसमें सभी भूत, वर्तमान और भविष्य समाहित हैं । मस्तिष्क की कोशिकाओं में यह मौलिक परिवर्तन 'अहं–भाव' द्वारा रोक दिया जाता है क्योंकि यह 'अहं–भाव' अपनी विभेदकारी एवं मनमोहक गतिविधियों में या कृत्रिम एवं पाखण्डपूर्ण तथाकथित समत्व–भाव में लिप्त होता है ।

घटनाएँ जो घटित हो रहा है, वे तथ्य हैं किन्तु धनात्मक या ऋणात्मक मानसिक निवेश के साथ घटनाओं की याद में तथ्य नहीं होता हैं – ठीक उसी तरह जैसे कि आग एक तथ्य है किन्तु आग की छवि (काल्पनिक छवि) तथ्यहीन है ।

बाहरी तकनीकी दुनिया में स्मृति व्यावहारिक कार्यों के निष्पादन में उपयोगी है, जहाँ 'मैं' केवल शरीर के प्रतिनिधि, एक पहचान या एक सन्दर्भ के रूप में कार्य करता है किन्तु आन्तरिक जगत में यदि 'मैं' नहीं है तो चिन्ता या पीड़ा से मुक्त स्मृति अपना देखभाल स्वयं करती है । इसमें कभी भी कोई गलती नहीं होती । किन्तु जब स्मृति और विस्मृति के क्षेत्र में तनाव एवं उत्तेजना युक्त 'मैं' उत्पन्न होता है, जो स्वयं को अस्तित्व से अलग समझता है तब मनुष्य जाति में प्रस्फुटन की गहनतम सम्भावना अर्थात् मस्तिष्क की कोशिकाओं में मौलिक परिवर्तन बिल्कुल अवरुद्ध हो जाता है । भूतकाल के दबावों एवं पूर्वाग्रहों से बुरी तरह ग्रस्त एवं अनुबन्धित मस्तिष्क के लिए क्या यह समझना सम्भव है? मानव मस्तिष्क में जब तक यह मौलिक परिवर्तन घटित नहीं होता, तब तक मानवता को किसी भी स्तर पर चाहे वह व्यक्तिगत हो या पारिवारिक या सामाजिक या राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय, शान्ति उपलब्ध नहीं होगी। हमलोग

शान्ति की बातें तो करेंगे किन्तु युद्ध की तैयारी भी करेंगे । हमलोग विकास और विनाश, दोनों के उपकरणों का साथ–साथ उत्पादन करेंगे । हमलोग एकता की बात करेंगे किन्तु राष्ट्र एवं राष्ट्र–भावना के रूप में विभाजन को प्रोत्साहित भी करेंगे । इस अर्थ में, ''संयुक्त राष्ट्र'' स्वयं में विरोधाभासी है ।

मानव–मस्तिष्क में जब यह पवित्र मौलिक परिवर्तन होगा तभी इस पृथ्वी पर शान्ति और स्वर्ग का अवतरण सम्भव है । भ्रान्ति 'मैं' द्वारा आध्यात्मिक मण्डियों से उधार में प्राप्त तथाकथित ''आध्यात्मिक सोच'' ने ही मनुष्य जाति की अच्छाई एवं पूर्णता में प्रस्फूटन की सम्भावना का नाश कर दिया है। आर्कबिशप, बिशप, पुरोहित, महामण्डलेश्वर, महन्त, स्वामी, आनन्द, गिरि, परमहंस, परमाचार्य, ब्रह्मकुमारी, महात्मा मुल्ला, इमाम, रबी – ये सभी पवित्र अहंकारी हैं और इसलिए ये सभी मानवता के लिए पवित्र विष हैं जो निश्चित रूप से चैतन्य के जागरण की सम्भावना अर्थात् अन्तर्जगत में मौलिक परिवर्तन के घटित होने की सम्भावना की हत्या कर देते हैं । जब मौलिक परिवर्तन घटित होता है तब समाज द्वारा उसे ''पागलपन'' भी माना जा सकता है ।

विचारों के सतत् उपयोग द्वारा विभेदकारी चित्त की भ्रान्ति को ही निरन्तरता प्रदान करने के अतिरिक्त तुम्हारे ''त्वं–भाव'' में और कुछ भी नहीं है ।

क्रियायोग में 'स्वाध्याय' ''अहं–भाव'' का विलय है ।

क्रियायोग में 'तप' ''अहं–भाव'' का क्षय है ।

क्रियायोग में 'ईश्वर प्रणिधान' भगवत्ता का उदय है ।

क्रियायोग में ध्यान का अर्थ – मन को विभेदकारी चित्त ''मैं'' की गतिविधियों से मुक्त रखना है । कई दिनों तक चलने वाले ''ध्यान–कार्यशाला'' में मन की शातिर एवं धूर्ततापूर्ण चालबाजी सीखना ध्यान नहीं है । वास्तविक धार्मिक जीवन ही ध्यान का जीवन है जिसमें ''मैं'' की गतिविधियाँ नहीं होतीं।

प्रेम कभी खेतों में नहीं उपजता।
प्रेम भव्य मण्डियों में नहीं बिकता।

प्रेम की अनुभूति तो विद्युत तड़ित ऊर्जा के रूप में उन्हें होती है जिनका अहंकार समर्पण की पवित्र मन्दाकिनी में विलीन हो चुका है।

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट विकाय,
राजा परजा जे रूचे, सीस देइ ले जाय।
गुरू रसायन प्रेम रस, पिबत अधिक रसाल,
कबीर पिवन दुर्लभ है, मांगे सीस कलाल ।

।। जय उपनिषद ।।